टिप्पणी

4

भारतीय विद्या का परिचय-2

प्रस्तावना

भारत भूमि पर प्रायः दस हजार वर्षों में जो आविष्कार हुआ, जो चिन्तन हुआ, जो शास्त्र द्वारा निश्चित है, वह सभी प्रायः संस्कृत भाषा द्वारा निबद्ध है। भारत में विद्यालयों की भाषा, राज व्यवहार की भाषा, शास्त्र-लेखन की भाषा और काव्य, नाटक आदि लेखन की भाषा संस्कृत ही थी। उस भाषा द्वारा इहलोक-परलोक के साधन के लिए भी विद्याएँ सुनिबद्ध हैं। उन विद्याओं का संक्षेप रूप से परिचय छात्राओं को हो, इसी उद्देश्य से यहाँ पूर्वपाठों में विद्या का विभाग प्रदर्शित है। और उसमें वेद और उसके अंगों का परिचय कराया गया है। उस भारतीय विद्या के परिचय में वेद के उपांग, उपवेद, यह अवशिष्ट है। उसका परिचय प्रस्तुत करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदों के उपांगों को जान पाने में;
- वेदों के उपवेदों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेद, उसके अंग, उपांग, वेदों के विभागों को जान पाने में;
- विभिन्न प्रस्थानों के प्रयोजन का अवधारण कर पाने में;
- भारतीय संस्कृत वाङ्मय का प्रारूप जान पाने में;

4.1 उपांग

अट्ठारह विद्यास्थान है। उसमें प्रथम चार वेद, और उसके छः अंग निरूपित हैं। अब उपांग निरूपित करते हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ये चार उपांग हैं। वे क्रमशः निरूपित हैं।

4.2 पुराण

वेदों को ग्रहण करके जीवन के कृत्य-अकृत्य के विवेक को प्राप्त करने में समर्थ उस विवेक के लिए तत्वदर्शी मुनियों ने पुराणों को रचा। और उन पुराणकताओं में भगवान वेदव्यास हैं। पुराणों में वेदोक्त तत्व का दृष्टान्त-रूपों के द्वारा पुरातन-देव-मुनि-राजा-प्रभृतियों के वृतान्तों द्वारा बोध कराते हैं। अतः ''इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपंबृहयेत्'' ऐसा सम्प्रदायिक कहते हैं। इतिहास और पुराण के द्वारा वेद के तात्पर्य का विस्तारपूर्वक निरूपण और परिवर्धन होता है। अर्थात् विस्तारपूर्वक दृष्टान्त आदि द्वारा अर्थ को खोलकर प्रकाशित किया गया है। पुराणों में वर्णित विषय वेद में कहे गए निगूढ़ तत्व के सरलतापूर्ण निरूपण के लिए अत्यन्त सहायक होते हैं। पुरातन वृतान्त धर्म आदि तत्व के निरूपण के लिए निदर्शन रूप में जब वर्णित होते हैं तब तत्व अभिव्यञ्जक वे सर्वदा नवीन के समान ही होते हैं। अतः पुरातन होने पर भी पुराण को नवीन ही कहते हैं। पुरा का अर्थ प्राचीन है। पुराण ग्रन्थों का सामान्य स्वरूप होता है, यथा

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित, इन पाँच अंशों से युक्त पुराण होता है। सर्ग सृष्टि है। प्रतिसर्ग ही सृष्टि का लय और पुनः सृष्टि है। वंश सृष्टि आदि में कब-कब कौन-कौन सा वंश हुआ यही वर्णन है। वंशानुचरित सूर्य-चन्द्र वंशीय राजाओं का वर्णन है। ये पाँच अंश पुराण में अन्तर्निहित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विषय पुराणों में होते हैं।

भक्ति मार्ग का प्रतिपादन और उसका प्रसार पुराणों का प्रधान प्रयोजन है। दुष्टों का विनाश करके भगवान् कैसे भक्तों की रक्षा करते हैं, इस विषय का ललिता पूर्वक प्रतिपादन से इन पुराणों को मानने वाले भक्तिमार्ग में प्रेरित होते हैं। भक्ति द्वारा दुःख का क्षय होता है और पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि होती है, ऐसी भक्तों में भावना उत्पन्न होती है। बहुत से पुराण शिवभक्ति प्रधान हैं। कुछ विष्णुभक्ति प्रधान हैं। और एक देवीप्रधान हैं।

पहले पुराणश्लोक संख्या एक करोड़ थी। भगवान् बादरायण व्यास देव ने संक्षिप्त करके उनको 14 लाख किया। अट्ठारह महापुराण हैं। उपपुराण भी बहुत हैं। यह नीचे तालिका

में पुराण का नाम और उसकी श्लोक संख्या प्रदान की गई है-

अनुक्रम	पुराण-नाम	श्लोक संख्या
1	ब्रह्म	30000
2	पद्म	55000
3	वैष्णव	23000
4	शैव	24000
5	भागवत (देवी)	18000
6	नारदीय	25000
7	मार्कण्डेय	9000
8	आग्नेय	16000
9	भविष्य	14500
10	ब्रह्मवैवर्त	18000
11	लैंगम (लिंग)	11000
12	वाराह	24000
13	स्कन्द	81100
14	वामन	10000
15	कौर्मम् (कूर्म)	18000
16	मत्स्य	14000
17	गरूड	19000
18	ब्रह्माण्ड	12000

पुराणों की कर्तृ संख्या और नाम

पुराणों के रचयिता भगवान् वेद व्यास हैं। उनका पुराणमुनि नाम प्रसिद्ध ही है। पुराणों की संख्या अट्ठारह है। उन नाम को ग्रहण करके कुछ प्राचीन श्लोक सर्वत्र उद्धृत हैं। और वह हैं-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥

यहाँ पुराणों के प्रथम अक्षर ग्रहण करके उनके नाम स्मरण करते हैं।

मद्वयम् – मकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण होते हैं और वह मत्स्य पुराण और मार्कण्डेय पुराण हैं।

भद्वयम् – भकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण के नाम भविष्यपुराण और भागवतपुराण हैं।

ब्रत्रयमफ – ब्रकार प्रथम अक्षर से युक्त तीन पुराणों के नाम ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्म पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण हैं।

वचतुष्टयम् – वकार प्रथम अक्षर से युक्त चार पुराणों के नाम वराहपुराण, वामन पुराण, वायुपुराण और विष्णु पुराण है।

अ – अग्नि पुराण

ना – नारद पुराण

प – पद्म पुराण

लि – लिंग पुराण

ग – गरूड पुराण

कू – कूर्म पुराण

स्क – स्कन्द पुराण

पुराण के प्रवचनकर्ता

किसके द्वारा कौन सा पुराण कहा गया, यह नीचे दिया जा रहा है–

आद्यं सनत्कुमारेण प्रोक्तं वेदविदां वराः।
द्वितीयं नारसिंहाख्यं तृतीयं नान्दमेव च॥

चतर्थं शिवधर्माख्यं दौर्वासं पञ्चमं विदुः।
षष्ठं तु नारदीयाख्यं कपिलं सप्तमं विदुः॥

अष्टमं मानवं प्रोक्तं ततश्चोशनसेरितम्।
ततो ब्रह्माण्डसंज्ञं तु वारूणाख्यं ततः परम्॥

ततः कालीपुराणाख्यं वाशिष्ठं मुनिपुंगवाः।
ततो वाशिष्ठं लैंगाख्यं प्रोक्तं माहेश्वरं परम्॥

ततः साम्बपुराणाख्यं ततः सौरं महाद्भुतम।
पाराशरं ततः प्रोक्तं मारीचाख्यं ततः परम्॥

भार्गवाख्यं ततः प्रोक्तं सर्वधर्मार्थसाधकम्।
एवमुपपुराणानि अनेक प्रकराणि द्रष्टव्यानि॥

एवम् अट्‌ठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। ये अन्य गणेश-नारसिंह-सौर आदि अट्‌ठारह उपपुराण हैं। सभी पुराणों का विस्तार अनन्त आकाश के समान गोचर होता है। पुराण वेदोक्त जीवन-विवेक का बोध कराते हैं। परन्तु वेद में सूक्ष्म रूप से कहे गए सृष्टि-प्रलय के विचार, युग, मन्वन्तर आदि के काल परिमाण, भगवान् के अवतार इत्यादि विलक्षण विषय पुराणों में अच्छी प्रकार से निरूपित हैं। धर्म-अधर्म निर्णय के प्रसंग में पुराणों के श्लोक प्रमाण रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

पुराणों में प्रतिपादन शैली वेद शैली से भिन्न दिखती है। मन्द मति वालों को भी गंभीर तत्व का ग्रहण जैसे सम्भव हो वैसे यहाँ विषय का निरूपण होता है। प्राचीन वृतान्त के निरूपण 'पुर:सर' में सभी प्रकाशित होता है। परन्तु यहाँ वैदिक परिभाषा नहीं होती है। लोक जीवन के निदर्शन द्वारा किया गया निरूपण लोगों को सरलता से हृदयग्राह्य होता है। पुराणों में वेद और काव्य-शैली के मध्य की कोई शैली होती है। उनमें कृत्य-अकृत्य का उपदेश मित्र के उपदेश के समान न अति कठिन और न ही सहसा परिहार के योग्य होता है। उससे पुराण को मित्र सम्मित आलंगारिका कहते हैं।

पाठागत प्रश्न 4.1

1. पुराण में जो विषय प्रधान है उसका प्रतिपादक श्लोक लिखिए।

2. महापुराण कितने हैं?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

3. पुराणों का रचयिता कौन है?

   (क) वेद व्यास (ख) शुक (ग) सनत्कुमार (घ) नारद

4. पुराण किस प्रकार का होता है?

   (क) प्रभुसम्मित (ख) कान्तासम्मित (ग) मित्रसम्मित (घ) मातृसम्मित

5. सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तर किस शास्त्र में प्रतिपादित हैं?

   (क) पुराण (ख) महाभारत (ग) रामायण (घ) धर्मशास्त्र

4.3 न्याय

भारतीय शास्त्रों के सम्पूर्ण उपकारक न्याय है। न्याय को आन्वीक्षिकी भी कहते हैं। चाणक्य के मत में सांख्य, योग और लोकायत, यह तीन आन्वीक्षिकी होती है। लोकायत न्याय शास्त्र ब्रह्मगार्ग्य द्वारा उक्त शास्त्र है। तर्कविद्या आन्वीक्षिकी में कैसे अन्तर्निहित है? 'तर्कविद्या' पद में तर्क अनुमान है। अत: जिस विद्या से अनुमान अच्छी प्रकार से प्रतिपादित होता

टिप्पणी

है, वह तर्क विद्या है। अनुमान सांख्य, मीमांसा, गौतमीय-न्याय और काणाद वैशेषिक में अच्छी प्रकार से प्रतिपादित है। अतः तर्कविद्या कणाद और गौतम का भी है। अतः नैयायिकों द्वारा कहा जाता है कि वे दोनों न्याय हैं। ब्रह्मसूत्र आदि में जब तार्किक ऐसा उल्लेख करते है तब 'तार्किक' पद से सांख्य ही जाने जाते हैं, नैयायिक नहीं। चाणक्य के मत में जो आन्वीक्षिकी है, उस आन्वीक्षिकी की महिमा को चाणक्य ने कहा-

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

सरलार्थ- सभी विद्याओं का प्रदीप आन्वीक्षिकी विद्या है। अर्थात् उन विद्याओं में निहित निगूढ़ तत्वों का ज्ञान आन्वीक्षिकी विद्या द्वारा होता है। यथा-अन्धकार में स्थित द्रव्य प्रदीप के प्रकाश द्वारा दिखते हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा शब्द प्रमाण द्वारा जो ज्ञात होता है, उसके गूढ़ अर्थ का ज्ञान तथा प्रामाण्य ज्ञान आन्वीक्षिकी विद्या द्वारा होता है। सभी कर्म आन्वीक्षिकी के अनुसार किये जाते हैं। अर्थात् कर्म के स्वरूप आदि को वेद आदि द्वारा जानकर आन्वीक्षिकी द्वारा सम्परीक्षण करते हैं। सभी धर्मों वैदिक कर्मों के आश्रम प्रवर्तिक देहान्तर प्राप्त स्वर्ग आदि के साधनभूत कर्मों में तर्क के द्वारा शरीर के अतिरिक्त नित्य आत्मा की निश्चित प्रवृत्ति समीप होने के कारण कहा गया है-

''यस्तर्केण अनुसन्धते स धर्मं वेद नेतरः।'' कर्म के सम्यक् ज्ञान के कारण कर्म में प्रवृत्त होता है। अतः यह विद्या उपाय अर्थात् साधनभूता है। सभी धर्मों की आश्रयभूता यह आन्वीक्षिकी विद्या है।

आन्वीक्षिकी की उपकारिता भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से ज्ञात है। अत एव सर्वत्र युक्ति युक्त प्रतिपादन शास्त्रों में उपलब्ध होता है। तर्क की उपकारिता निम्न श्लोक में सुनिबद्ध है-

मोहं रूणद्धि विमलीकुरूते च बुद्धिं
सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।

शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यता युनक्ति
तर्कश्रमो न कुरूते कमिहोपकारम्॥

कणाद् और गौतम के सम्प्रदाय में भी आन्वीक्षिकी न्याय कहलाती है। न्याय भाष्यकार ने कहा-

''कः पुनरयं न्यायः। प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः।
प्रत्यक्षागमाश्रितम् अनुमानं सा आन्वीक्षिकी।

प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणम् अन्वीक्षा, तया प्रवर्तते इति आन्वीक्षिकी।'' न्याय क्या करता है? जिसके द्वारा विवक्षित अर्थ की सिद्धि होती है, वह न्याय है। न्याय पद का अन्य भी अर्थ प्रसिद्ध है। यथा- प्रतिज्ञाद्यवयवसमूहो न्यायः। स्यादेतत्।

टिप्पणी

पाणिनीय पदशास्त्र, कणादप्रणीत पदार्थशास्त्र की सर्वशास्त्र उपकारिता यहाँ भी इस प्रकार प्रतिपादित है- काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोकारकम्।

अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाऽप्रिये स्पृशत् इत्यादि वेद वाक्यों द्वारा आत्मा शरीर से अतिरिक्त है, यह ज्ञात होता है। अर्थात् जड़ से भिन्न आत्मा। तथापि मिथ्या ज्ञान के कारण शरीर आदि एक ही आत्मा है, इस भ्रान्ति से जीव निरन्तर दु:ख को प्राप्त करता है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि मोक्ष साधन होते हैं। आत्मा उस देह आदि जड़ से भिन्न हैं, श्रुति द्वारा वैसा प्रतिपादन करने के कारण, यह अनुमान किया जाता है। और वहाँ योग समाधि द्वारा आत्म-साक्षात्कार होता है। उसमें आत्म स्वरूप यथावत् प्रकट होता है। तब वासना सहित मिथ्याज्ञान का नाश होता है। राग द्वेष के कारण ही विहित और निषेध में कर्म प्रवर्तित होते हैं। दोषाभाव में प्रवर्तित नहीं होते हैं। विहित कर्म द्वारा पुण्य धर्म उत्पन्न होता है। निषिद्ध कर्म के आचरण से पाप अधर्म उत्पन्न होता है। कर्म नहीं करने पर धर्म-अधर्म भी उत्पन्न नहीं होते। पूर्वजन्म में किये गए कर्म द्वारा उत्पन्न धर्म-अधर्म संचित किए जाते हैं। आत्म साक्षात्कार से धर्म-अधर्मात्मक संचित का नाश होता है। प्रारब्ध का तो अनुभव द्वारा नाश होता है। अत: धर्म-अधर्म के पूर्णत: विलय होने पर दु:ख के उत्पत्ति का कारण भी नहीं बचता। तब चरम दु:ख भी ध्वंस हो जाता है। यह ही गौतमीय न्याय के मत में मोक्ष है। इसीलिए सूत्र है-

'दु:ख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग:'।।

सरलार्थ- दु:ख का कारण जन्म है। जन्म का कारण प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति का कारण दोष है। दोष का कारण मिथ्या ज्ञान है। अत: देह आदि आत्मा है, इस मिथ्या ज्ञान के नाश होने पर राग, द्वेष आदि दोष नष्ट होते हैं। उससे कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती है। कर्म के अभाव में धर्म-अधर्म का अभाव होता है। उसके द्वारा पुनर्जन्म नहीं होता। जन्म के अभाव में दु:ख नहीं होता है।

इसमें ही पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के बिना उनके साधर्म्य-वैधर्म्य का ज्ञान सम्भव नहीं होता है। यथार्थ ज्ञान होने पर ही सम्भव होता है। वही 'आत्मा देह आदि जड़ से भिन्न है', यह अनुमान कर सकते है। यह युक्ति-अनुसन्धान रूप अनुमान मनन में उपयोगी होता है। इस प्रकार मनन में उपयोगी न्याय शास्त्र है। अत: मोक्ष में भी उपयोगी है। इस प्रकार मोक्ष पदार्थ ज्ञान का परम प्रयोजन है। वही पदार्थ ज्ञान न्यायशास्त्र में अच्छी प्रकार से होता है।

गौतमीय न्याय

उसमें महर्षि गौतम ने सूत्र रूप में ग्रन्थ को रचा। (गौतम का अपर नाम अक्षपाद है) उसमें पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आहनिक हैं। मधुसूदन सरस्वती के मत में गौतम प्रणीत शास्त्र आन्वीक्षिकी है। वही अब न्याय शास्त्र के रूप में प्रचलित है। उसमें सोलह पदार्थ हैं। वे हैं- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव,

तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। इन पदार्थों की उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा करनी चाहिए। उसके द्वारा तत्व ज्ञान होता है। तथा तत्व ज्ञान होने पर मिथ्या ज्ञान नष्ट होता है। एवम् क्रमशः मोक्ष सिद्ध होता है।

"न्यायमते मोक्षलाभप्रक्रिया किञ्चिदुपन्यस्यते।"

शरीर, छः इन्द्रियाँ, छः विषय, छः बुद्धि, सुख और दुःख ये इक्कीस (21) गौण और मुख्य के भेद के भिन्न दुःख हैं और उनकी आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति अपवर्ग है।

'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः'- न्यायसूत्र। और आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, ये नौ आत्मा के विशेष गुणों का उच्छेद ही है।

यावदात्मगुणाः सर्वे नेच्छिन्ना वासनादयः।
तावदात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्नाविकल्प्यते॥

धर्माधर्मनिमित्तो हि सम्भवः सुखदुःखयोः।
मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मनः॥

तदुच्छेदे तु तत्काकर्यशरीरनुपलम्भनात्।
नात्मनः सुखदुःखे स्त इत्यासौ मुक्त उच्यते॥ (न्यायमञ्जरी)

वह उपाय जन्म, दोष अपाय में तदनन्तर अपाय "अपवर्ग दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायदपतवर्ग, इस सूत्र से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति, और मिथ्याज्ञान का अस्तित्व न होने पर आत्मा नहीं है, अनात्म शरीर में आत्मा नहीं है इत्यादि रूप है। इसके निवृत्ति के लिए ही 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' श्रुति द्वारा स्वात्म साक्षात्कार विधित है। यह ही, उससे अन्य नहीं, प्रतियोगी और अनुपयोगी द्वारा आत्मा ही तत्वतः ज्ञेय है, इस प्रकार से आत्मतत्व-विवेक में उक्त है। एवम् शरीरभिन्नत्व द्वारा आत्मज्ञान का और आत्मभिन्नत्व द्वारा शरीर ज्ञान का भी मोक्ष हेतुत्व सिद्ध है।

काणाद वैशेषिक-

महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्र प्रणीत किया। (इस दर्शन का औलुक्य दर्शन, यह अपर अभिधान है।) उनके ग्रन्थ में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आहनिक हैं। उसमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, ये छः भाव पदार्थ और अभाव रूपी सप्त पदार्थ है। इस प्रकार संकलन द्वार वैशेषिक दर्शन में सप्त पदार्थ प्रतिपादित हैं। इन पदार्थों का साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान होता है फिर तत्वज्ञान होता है, ऐसा कणाद का अभिप्राय है। इस दर्शन में विशेष नामक कोई पदार्थ स्वीकार किया गया। अत एव इस दर्शन का नाम वैशेषिक दर्शन है। वैशेषिक के मत में जो सात ही पदार्थ हैं। वे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव है। उसमें द्रव्य नौ हैं। वे हैं- पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुण चौबीस हैं। और वे हैं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व,

टिप्पणी

स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार। कर्म पाँच होते हैं। और वे हैं- उत्क्षेपण, अपक्षेपण, अकुञ्चन, प्रसारण, गमन। सामान्य दो प्रकार को होता है। और वह पर और अपर है। विशेष अनन्त हैं। समवाय एक ही होता है। अभाव के चार भेद हैं। और वे हैं- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव।

पाठगत प्रश्न 4.2

1. सभी शास्त्रों का उपकारक क्या है?

   (क) व्याकरण (ख) मीमांसा (ग) योग (घ) सांख्य

2. अक्षपाद कौन है?

   (क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) गौतम (घ) व्यास

3. न्याय मत में कितने पदार्थ है?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

4. कणाद के कितने पदार्थ हैं?

   (क) 5 (ख) 6 (ग) 7 (घ) 8

5. कणाद के मत में भाव पदार्थ कितने हैं?

   (क) 5 (ख) 6 (ग) 7 (घ) 8

6. विशेष नामक कोई पदार्थ है, ऐसा कौन स्वीकार करता है?

   (क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) गौतम (घ) व्यास

4.4 मीमांसा

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'। सम्पूर्ण वेद भी धर्म का मूल है। और वे वेद शब्दस्वरूप ही हैं। उन वेद-वाक्यों के तात्पर्य बोध के लिए मीमांसा दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। मीमांसा दर्शन ही वेदवाक्यों का तात्पर्य कहाँ और किस अर्थ में होता है, इसका प्रतिपादन करता है। अतएव मीमांसा दर्शन में भी वाक्यार्थ विचार प्रक्रिया वर्णित है। व्याकरण दर्शन का भी प्रादुर्भाव वेदों के रक्षण के लिए ही हुआ। अत एव व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन प्रसंग में कहा भी गया- रक्षोहागमलघ्वसन्देहा: प्रयोजनमिति। उन वेदों का तात्पर्यभूत अर्थ सप्रमाण एवं युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करने के लिए न्यायदर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। छ: भारतीय दर्शनों में साक्षात् वेद का आश्रय लेकर दो प्रकार के दर्शन प्रवृत्त हुए। वे हैं पूर्व मीमांसा और उत्तरमीमांसा। मीमांसा शब्द का अर्थ है पूजित विचार, विचारपूर्व तत्वनिर्णय। उत्तर

मीमांसा दर्शन वेदान्त नाम से और पूर्व मीमांसा दर्शन मीमांसा दर्शन नाम से पृथक है। इनके मध्य में मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डात्मक वेदभाग के विचार के लिए प्रवृत्त है। अर्थात् वेद के कर्मकाण्ड में विहित विषयों का जहाँ युक्ति द्वारा निर्णय होता है, और जहाँ वेदविहित विषयों में संशय होने पर समाधान प्राप्त होता है वही पूर्वमीमांसा दर्शन है। धर्म-जिज्ञासा ही उसमें मुख्य विषय है। उत्तरमीमांसा दर्शन ही वेदान्त दर्शन के रूप में प्रसिद्ध है। उसमें ज्ञानकाण्डीय विषयों का अर्थात् उपनिषद् में प्रतिपादित विषयों का विस्तारपूर्वक विचार प्राप्त होता है। ब्रह्म-जिज्ञासा ही उसमें मुख्य विषय है।

4.4.1 कर्म मीमांसा

मीमांसा पद से कर्ममीमांसा, शारीरिक मीमांसा, इन दो मीमांसाओं का बोध होता है। कर्ममीमांसा ही धर्म मीमांसा भी कहलाता है। कर्ममीमांसा को महर्षि जैमिनि ने रचा। उसका प्रथम सूत्र है- 'अथातो धर्मजिज्ञासा'। व्यास प्रणीत शारीरक मीमांसा में प्रथम सूत्र है- अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। इस प्रकार धर्ममीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, यह व्यवहार दोनों मीमांसाओं का होता है। कालक्रम द्वारा साम्प्रतिक मीमांसा का अर्थ कर्ममीमांसा, पूर्व मीमांसा ही ग्रहण करते हैं। ब्रह्म मीमांसा तो वेदान्त, ब्रह्मसूत्र इत्यादि कहे जाते हैं। जैमिनि मुनि द्वारा प्रणीत सोलह अध्याय हैं। उनमें प्रारम्भ के बारह अध्याय कर्म प्रतिपादित करते हैं। कर्म का ही कर्ममीमांसा में प्राधान्य होता है। अतः 'द्वादशाध्यायी' नाम प्रसिद्धि को प्राप्त हुई। अवशिष्ट चार अध्यायों में उपासना प्रतिपादित है। वह उपासना काण्ड कहलाता है। वह संकर्षण काण्ड, देवताकाण्ड भी कहा जाता है। उपासना भी कर्म ही है। अतः कर्म मीमांसा में ही देवताकाण्ड का भी अन्तर्भाव करते हैं।

जैमिनि के मत में यज्ञ आदि द्वारा स्वर्गलाभ ही परमपुरूषार्थ है। स्वर्ग कर्म द्वारा साधेय है। अतः कर्म प्रतिपादित है।

4.4.2 शारीरिक मीमांसा

यह शारीरिक मीमांसा, ब्रह्म मीमांसा, ब्रह्मसूत्र, उत्तर मीमांसा इत्यादि कहा जाता है। यह चतुरध्यायी शारीरिक-मीमांसा 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा', आदि, 'अनावृत्तिः शब्दाद्', अन्त जीवब्रह्मैकत्व के साक्षात्कार का हेतु श्रवणाख्यविचार के प्रतिपादक न्यायों का आवेदन कर भगवान बादरायण द्वारा किया गया। यहाँ यह अवधेय है कि वेदान्त के तीन प्रस्थान है। उन तीनों प्रस्थानों में शारीरक मीमांसा, अन्यतम है। और यह न्याय प्रस्थान अथवा युक्ति प्रस्थान कहा जाता है। श्रुतिप्रस्थान और स्मृतिप्रस्थान, ये दो प्रस्थान इससे भिन्न ही है।

जीव-ब्रह्म के ऐक्य के ज्ञान द्वारा मर्त्य का परम पुरूषार्थ मोक्ष सिद्ध होता है, इस मीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है। अत एव ब्रह्म, उसका लाभ, जीव, सृष्टि, ईश्वर, माया, बन्ध, मोक्ष, उसके साधन, समाधि इत्यादि विषय का यहाँ अन्तर्भाव होता है। शारीरक

मीमांसा में 555 सूत्र हैं। अद्वैत मत में 191 अधिकरण हैं। अध्यायों के नाम हैं। इसलिए कारिका–

शास्त्रं ब्रह्मविचाराख्यमध्याया: स्युश्चतुर्विधा:।
समन्वयाविरोधौ द्वौ साधनं फलं तथा॥

अध्याय	सूत्र संख्या	अधिकरण संख्या	अध्याय नाम
प्रथम	134	39	समन्वय
द्वितीय	157	47	अविरोध
तृतीय	186	67	साधन
चतुर्थ	77	38	फल

इस मीमांसा का किस अध्याय में, किस पाद में, कौन-से विषय की आलोचना की गई है, यहाँ संक्षिप्त में प्रस्तुत है।

प्रथम अध्याय-समन्वय

उत्तरमीमांसा में सभी वेदान्त वाक्यों का साक्षात् अथवा परम्परा का प्रत्यगभिन्न अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य, यह समन्वय प्रथम अध्याय द्वारा प्रदर्शित है। और वहाँ प्रथम पाद में स्पष्टब्रह्मलिंग युक्त वाक्य विचार किये जाते हैं। द्वितीय में तो अस्पष्टलिंग उपास्य ब्रह्म विज़य हैं। तृतीय पाद में अस्पष्ट ब्रह्मलिंग प्रायश: जानने योग्य ब्रह्मविषय हैं। एवं तीनों पादों में वाक्य विचार समाहित है। चतुर्थ पाद में तो प्रधान विषयत्व द्वारा संदिह्यमान अव्यक्ताज आदि पद चिन्तनीय हैं।

द्वितीय अध्याय - अविरोध

एवम् वेदान्तों के अद्वय ब्रह्म के सिद्ध समन्वय में वहाँ संभावित स्मृति, तर्क आदि प्रयुक्त तर्कों द्वारा विरोध की आशंका और उसका परिहार किया, ऐसा अविरोध नामक द्वितीय अध्याय द्वारा दर्शित है। उसमें प्रथम पाद में सांख्य, योग, कणाद आदि स्मृतियों द्वारा सांख्य आदि के प्रयुक्त तर्कों द्वारा विरोध वेदान्त समन्वय का परिहार किया गया।

द्वितीय पाद में सांख्य आदि मतों का दुष्टत्व प्रतिपादित है। स्वपक्ष-स्थापन-परपक्ष-निवारण-रूप-द्वयात्मक पर्व का विचार। तृतीय पाद में महाभूत-सृष्टि आदि श्रुतियों का परस्पर विरोध और पूर्वभाग द्वारा परिहार। उत्तरभाग द्वारा जीव के विषयों का। चतुर्थ पाद में इन्द्रियविषय श्रुतियों के विरोध का परिहार।

तृतीय अध्याय-साधन

तृतीय अध्याय में साधन का निरूपण है। उसमें प्रथम पाद में जीव का परलोक गमनागमन निरूपण द्वारा वैराग्य निरूपित है। द्वितीय पाद में पूर्वभाग द्वारा पदार्थ शोधित है। उत्तर

भाग द्वारा वह पदार्थ। तृतीय पाद में निर्गुण ब्रह्म में नाना शाखाओं में पठित पुनरूक्त पदों का उपसंहार किया गया है। और प्रसंग से सगुण-निर्गुण विद्याओं में शाखान्तरीय गुणों का उपसंहार और अनुपसंहार निरूपित है। चतुर्थ पाद में निर्गुण ब्रह्म विद्या के बहिरंग साधन आश्रम, यज्ञ आदि और अन्तरंग साधन शम, दम, निदिध्यासन आदि निरूपित है।

चतुर्थ अध्याय - फल

चतुर्थ अध्याय में सगुण-निर्गुण विद्याओं के फल विशेष का निर्णय किया गया है। उसमें प्रथम पाद में श्रवण आदि वृत्ति द्वारा निर्गुण ब्रह्म साक्षात्कार करके जीव से पाप-पुण्यालेप लक्षणा जीवन्मुक्ति होती है। द्वितीय पाद में क्रियमाण (मनुष्य) के उत्क्रान्ति के प्रकार चिन्तित हैं। तृतीय पाद में सगुण ब्रह्मविद मृत्यु का उत्तरमार्ग अभिहित है। चतुर्थ पाद में पूर्वभाग द्वारा निर्गुण ब्रह्मविद ने विदेहकैवल्यप्राप्ति को कहा। उत्तर भाग द्वारा सगुण ब्रह्मविद ब्रह्मलोक की स्थिति को कहा गया है। यही सभी शास्त्रों का मूर्धन्य है। शास्त्र के अनन्तर सभी शेषभूत, यही मुमुक्षुओं द्वारा चरमत्व के द्वारा आदरणीय श्रीशंकर भगवान द्वारा पादोदित प्रकार से रहस्य को प्राप्त किया।

वेदान्त दर्शन-

वेदान्त दर्शन जब कहते है तब ब्रह्मसूत्र, ब्रह्म मीमांसा, शारीरिक मीमांसा इत्यादि से एक ही प्रतिपादित है। तथापि वेदान्त दर्शन पद से आगे कहे गए सीमित अर्थ ही नहीं है। वेदान्त में द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, इत्यादि विविध दर्शन, ये सम्प्रदाय अन्तर्निहित हैं। उपनिषद् ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता, ये ग्रन्थ सामग्री भी वेदान्त कहलाता है। वही प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। उपनिषद् श्रुति प्रस्थान है। ब्रह्मसूत्र न्याय प्रस्थान (युक्ति प्रस्थान)। और गीता स्मृति प्रस्थान है। इन सभी ग्रन्थों के विपुल भाष्य और उनकी व्याख्यापरक-टीकाएं ये अनेक प्रकार से अनेक भाषाओं में ग्रन्थ रूप में हुए। प्रकरण ग्रन्थ भी विधि है। इस प्रकार ये समग्र विस्तृत वेदान्त पद व्याख्यात है, ऐसा अवधेय है। इनका परिचय यथा स्थान होगा। अतः यहाँ विस्तार के अधिकता से विराम किया गया।

4.5 धर्मशास्त्र

धर्मशास्त्र के चौदह (14) उपांग है। स्मृति, शास्त्र, इतिहास, सांख्या, योग इनका धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव है। वाल्मीकि मुनि द्वारा प्रणीत रामायण, भगवान व्यास द्वारा प्रणीत महाभारत इतिहास में अन्तर्निहित हैं। स्मृतिकार अनेक हुए। उनमें मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, सवर्त, शाल्तप, पराशर, गौतम, शंख लिखित हारीत, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, देवल, नारद्, पैठिनसि, ये 22 मुनि हैं जिनके स्मृति शास्त्र प्रसिद्ध हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं। वर्ण की सृष्टि स्वयं भगवान करते हैं। इसलिये गीता की उक्ति है – चातुर्वण्यं मया सृष्ट्य् गुण कर्म-विभागशः। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यास, ये चार आश्रम वयोविभाग द्वारा होते हैं। वर्णों और आश्रमों के आचार के नियम हैं। उन नियमों का अनुसरण करके वैदिक संस्कृति प्रवर्तित होती है। कुछ तत्व काल द्वारा परिवर्तित होते है। अतः उन-उन कालों में कौन सा आचार साधना चाहिए, इसका बोध करने के लिए तब तब स्मृतिकारों ने स्मृति लिखी। कुछ तत्व काल द्वारा परिवर्तित नहीं होते हैं। उस विषय में मतभेद अथवा परिवर्तन का प्रयोजन ही नहीं है।

पाठगत प्रश्न 4.3

1. मनु ने किसे धर्ममूल कहा?

   (क) वेद (ख) न्याय (ग) काव्य (घ) युक्ति

2. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन सा दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

3. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) पूर्व मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

4. साक्षात् वेद को आश्रित करके कौन दर्शन प्रवृत्त हुआ?

   (क) उत्तर मीमांसा (ख) न्याय (ग) सांख्य (घ) योग

5. जैमिनि द्वारा कितने अध्याय प्रणीत है?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

6. कर्ममीमांसा में कितने अध्याय हैं?

   (क) 12 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

7. जैमिनिप्रणीत द्वितीय काण्ड का नाम क्या है?

   (क) कर्मकाण्ड (ख) ज्ञानकाण्ड (ग) देवताकाण्ड (घ) न्यायकाण्ड

8. जैमिनिप्रणीत द्वितीयकाण्ड का यह नाम नहीं है।

   (क) कर्मकाण्ड (ख) उपासनाकाण्ड (ग) देवताकाण्ड (घ) संघर्षकाण्ड

9. जैमिनि के मत में परम पुरूषार्थ क्या है?

   (क) मोक्ष (ख) धर्म (ग) मृत्यु (घ) स्वर्ग

10. शारीरिक मीमांसा को किसने प्रणीत किया?

    (क) जैमिनि (ख) कणाद (ग) बादरायण (घ) कपिल

11. शारीरिक मीमांसा का अपर नाम क्या है?

    (क) उत्तरमीमांसा (ख) पूर्वमीमांसा (ग) कर्ममीमांसा (घ) धर्ममीमांसा

12. शारीरिक मीमांसा का अपर नाम क्या है?

    (क) ब्रह्मसूत्र (ख) पूर्वमीमांसा (ग) कर्ममीमांसा (घ) धर्ममीमांसा

13. शारीरिक मीमांसा में कितने अध्याय है?

    (क) 1 (ख) 2 (ग) 3 (घ) 4

14. शारीरिक मीमांसा में कितने सूत्र हैं?

    (क) 3992 (ख) 400 (ग) 550 (घ) 555

15. शारीरिक मीमांसा में प्रथम अध्याय का नाम क्या है?

    (क) समन्वय (ख) अविरोध (ग) साधन (घ) फल

16. रामायण के चौदह विद्याओं में कौन अन्तर्भाव है?

    (क) ब्राह्मण में (ख) कल्प में (ग) अर्थशास्त्र में (घ) धर्मशास्त्र में

17. महाभारत के चौदह विद्याओं में कौन अन्तर्भाव है?

    (क) ब्राह्मण में (ख) कल्प में (ग) अर्थशास्त्र में (घ) धर्मशास्त्र में

उपवेद-

अट्ठारह विद्या स्थान है। उसमें प्रथम चार वेद है, वहाँ से छः अंग निरूपित है। उसके पश्चात् पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, ये चार उपांग निरूपित हैं। अब उपवेद निरूपित करते हैं। और वे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र, ये चार उपवेद निरूपित करते हैं।

ऋग्वेद का उपवेद ही आयुर्वेद है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद ही है। इसका अन्य नाम राजविद्या भी है। सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद ही है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थशास्त्र ही है। अर्थशास्त्र को अर्थवेद भी कहते हैं।

4.6.1 आयुर्वेद

ब्रह्म प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, धन्वन्तरी, भारद्वाज, आत्रेय, अग्निवेश्य, इत्यादि द्वारा

आयुर्वेद का उपदेश किया गया। उसका ही संक्षेप चरक द्वारा किया गया। चरक के मत में आयुर्वेद के सूत्र, शरीर, ऐन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विज्ञान, विकल्प और सिद्धि, ये आठ स्थान होते हैं। सुश्रत-वाग्भट्ट के मत में सूत्र, शरीर, निदान, चिकित्सा और कल्प, ये पाँच अंग प्रतिपादित हैं।

आयुर्वेद के आठ अंग होते हैं। वे हैं- 1) काय चिकित्सा, 2) कौमारभृत्य/बालचिकित्सा, 3) ग्रहचिकित्सा/भूतिवद्या, 4) ऊर्ध्वांग चिकित्सा/ शलाक्य चिकित्सा, 5) शल्यचिकित्सा, 6) दंष्ट्र चिकित्सा, 7) वृष चिकित्सा/ वाष्पीकरण, 8) जरा चिकित्सा/सुश्रुत के द्वारा कामशास्त्र का वाजीकरण, यह नाम किया गया। और कामशास्त्र भी प्रतिपादित किया गया। अतः कामशास्त्र का अन्तर्भाव आयुर्वेद में होता है। वात्स्यायन मुनि ने कामशास्त्र को विस्तारपूर्वक लिखा। उसमें पाँच अध्याय हैं। शास्त्रोक्त प्रकार से विषय भोग में करने वाले कार्य भी दुःख उत्पन्न करते ही है, ऐसा कामशास्त्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। अतः जिस किसी मार्ग द्वारा विषम-वैराग्य ही उत्पन्न होता ही है, ऐसा कामशास्त्र का अभिमत है। अत एव विषय वैराग्य ही इसका प्रयोजन है। रोग, उसके कारण, रोग निवृत्ति, आरोग्य-साधन, इनका ज्ञान चिकित्सा शास्त्र का प्रयोजन है।

4.6.2 धनुर्वेद

धनुर्वेद विश्वामित्र द्वारा प्रणीत पाद चतुष्टयात्मक है। उसमें प्रथम दीक्षा पाद है। द्वितीय संग्रहपाद है। तृतीय सिद्धिपाद है, चतुर्थ प्रयोगपाद हैं। उसमें प्रथम पाद में धनुर्लक्षण और अधिकारी-निरूपण किया गया है। यहाँ धनु शब्द रूढ होकर धनु-विधायुध में प्रवर्तित होता है। और वह आयुध चार प्रकार का है- मुक्तममुक्त, मुक्तामुक्त, यन्त्रमुक्त, मुक्तचक्र आदि। अमुक्त खड्ग आदि। मुक्तामुक्त शल्य अवान्तर भेद आदि। यन्त्रमुक्त शर आदि। वह मुक्त अस्त्र को कहते हैं। अमुक्त शस्त्र को कहते है। वह भी ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य, अग्नेय आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। एवं साधिदैवत, समन्त्रक चार प्रकार के आयुधों में जिनका अधिकार क्षत्रिय कुमारों तथा उनके अनुयायियों का है, वे सभी चार प्रकार के हैं, पदाति-रथ-तुरग पर आरूढ़ होते हैं। दीक्षा, अभिषेक, शकुन, मंगल, करण आदि सभी प्रथम पाद में निरूपित हैं। द्वितीय पाद में सभी शस्त्र विशेष के आचार्य का और लक्षण पूर्वक संग्रहण के प्रकारों को दिखाया गया है। तृतीय पाद में गुरू सम्प्रदाय में सिद्धों के शस्त्र विशेष का पुनः-पुनः अभ्यास, मन्त्र-देवता, सिद्धिकरण भी निरूपित है। एवं देवतार्चन के अभ्यास द्वारा सिद्धों के अस्त्र विशेषों का प्रयोग चतुर्थपाद में निरूपण है। क्षत्रियों के स्वधर्म आचरण, युद्ध, दुष्ट और चोर आदि को दण्ड, और प्रजा पालन धनुर्वेद का प्रयोजन है। इस प्रकार ब्रह्म प्रजापति आदि के क्रम से विश्वमित्र प्रणीत धनुर्वेद शास्त्र है।

4.6.3 गान्धर्ववेद

गीत, वाद्य, नृत्य इत्यादि मनोरञ्जन के अनेक उपाय हैं। इनका उपयोग देवता की आराधना में और निविर्कल्प समाधि में हो, इस बुद्धि से ये शास्त्र आचार्य/मुनि भरत द्वारा प्रणीत है। वह ही इसका मुख्य प्रयोजन है। इसलिए मधुसूदन सरस्वती ने कहा–देवताराध ननिर्विकल्प समाध्यादिसिद्धिश्च गान्धर्ववेदस्य प्रयोजनम्। इसमें संगीतशास्त्र के तत्व व्याख्यात हैं।

4.6.4 अर्थशास्त्र

इस प्रकार के अर्थशास्त्र बहुत हैं। नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्र और चौसठ कलाशास्त्र नाना मुनियों द्वारा प्रणीत और उन सभी के लौकिकवत् प्रयोजन भेद द्रष्टव्य हैं। एवम् अट्ठारह विद्याएँ त्रयी शब्द द्वारा कही गई। अन्यथा न्यूनता के प्रसंग के कारण। नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्र (पाकशास्त्र) और चौसठ कलाशास्त्र अर्थशास्त्र के विविध प्रकार हैं।

पाठगत प्रश्न 4.4

1. ऋग्वेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

2. यजुर्वेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

3. सामवेद का उपवेद क्या है?

   (क) आयुर्वेद (ख) धनुर्वेद (ग) गान्धर्ववेद (घ) अर्थशास्त्र

4. आयुर्वेद किसका उपवेद है?

   (क) ऋग्वेद का (ख) यजुर्वेद का (ग) सामवेद का (घ) अथर्ववेद का

5. यह आयुर्वेद के आचार्य है?

   (क) चरक (ख) विश्वमित्र (ग) भरतमुनि (घ) वशिष्ठ

6. यह धनुर्वेद के प्रणेता हैं?

   (क) चरक (ख) विश्वमित्र (ग) भरतमुनि (घ) वशिष्ठ

7. चरक मत के द्वारा आयुर्वेद के कितने स्थान हैं?

(क) 3 (ख) 4 (ग) 7 (घ) 8

8. आयुर्वेद के कितने अंग हैं?

(क) 3 (ख) 4 (ग) 7 (घ) 8

9. कामशास्त्र का अन्तर्भाव कहाँ होता है?

(क) आयुर्वेद में (ख) गान्धर्ववेद में(ग) कल्प में (घ) तन्त्रशास्त्र में

10. कामशास्त्र के प्रणेता कौन हैं?

(क) वात्स्यायन (ख) वाग्भट्ट (ग) सुश्रुत (घ) चरक

11. कामशास्त्र का प्रयोजन क्या है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) वैराग्य

12. विश्वामित्र प्रणीत धनुर्वेद के तृतीय अध्याय का नाम क्या है?

(क) दीक्षापाद (ख) संग्रहपाद (ग) सिद्धिपाद (घ) प्रयोगपाद

13. शर आदि किस प्रकार के आयुध है?

(क) मुक्त (ख) अमुक्त (ग) मुक्तामुक्त (घ) यन्त्रमुक्त

14. गान्धर्ववेद का मुख्य प्रयोजन क्या है?

(क) मनोरञ्जन (ख) गीत (ग) नृत्य (घ) निविकल्पक समाधि-सिद्धि

4.7 सांख्य और योग

4.7.1 सांख्य

सांख्य और योग की पृथक दर्शन के रूप में गणना होती है। महर्षि कपिल सांख्यशास्त्र के प्रणेता हैं। उन्होंने 527 सांख्यसूत्रों की रचना की। उसमें 6 अध्याय हैं। उसमें प्रथम अध्याय में विषय निरूपित हैं। द्वितीय अध्याय में प्रधान कार्य। तृतीय अध्याय में विषयों से वैराग्य। चतुर्थ अध्याय में विरक्त पिंगलाकुरवादियों की आख्यायिकाएँ। पञ्चम अध्याय में परपक्षनिर्णय है। षष्ठ में सभी का अर्थ संक्षेप है।

त्रिविध दु:खों की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक निवृत्ति ही मोक्ष रूपी पुरूषार्थ है, ऐसा सांख्य का अभ्युपगम है। प्रकृति-पुरूष के विवेकज्ञान के द्वारा पुरूषार्थ सिद्धि होती है,

उसी प्रकृति-पुरूष का विवेकज्ञान सांख्यशास्त्र का प्रयोजन है।

दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति का अर्थ है कि जिस दु:ख के नाश होने के पश्चात् पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, वह आत्यन्तिक निवृत्ति है। दु:ख का नाश निश्चय ही होता है, वह ऐकान्तिक निवृत्ति है। दु:ख आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इस भेद से तीन प्रकार का है।

सांख्यदर्शन में पच्चीस तत्व प्रपञ्चित हैं। एवं पच्चीस संख्या के साथ सम्बन्ध होने के कारण इस शास्त्र का नाम सांख्य है, ऐसा कुछ मानते हैं। और महाभारत में उक्त है-

संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।
तत्वनि च चतुर्विंशत् तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥

और वे पच्चीस (25) तत्व हैं- पुरूष, प्रकृति, महत, अहंकार, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, ये पाँच तन्मात्राएँ, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी, ये पाँच महाभूत, श्रोत-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन।

4.7.2 योग

महर्षि पतञ्जलि द्वारा सूत्र रूप में प्रणीत योगशास्त्र है। उसमें समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद, ये चार पाद हैं। और 195 सूत्र हैं।

सांख्य में जो तत्व हैं, वे ही योगशास्त्र में भी हैं। सांख्य ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं। योग स्वीकार करते हैं। एवं 26 तत्व हैं। अत: योग सेश्वर सांख्य है, यह भी प्रचलित है। योगाभ्यास द्वारा कैवल्य लाभ, यह योग का मुख्य प्रयोजन है। विजातीय प्रत्यय निरोध द्वार से निदिध्यासन की सिद्धि और उससे कैवल्यलाभ होता है।

योगशास्त्र में 'अथ योगानुशासनम्' प्रथम सूत्र है। वहाँ प्रथम पाद में चित्तवृत्तिनिरोधात्मक समाधि अभ्यास-वैराग्य रूप और उसके साधन निरूपित हैं। द्वितीय पाद में विक्षिप्तचित्त की भी समाधि सिद्धि के लिए चित्तवृत्तिनिरोधात्मक यम-नियम-आसन-प्राणायम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि, ये आठ अंग निरूपित हैं। तृतीय पाद में योग विभूति और चतुर्थ पाद में कैवल्य है।

पाठगत प्रश्न 4.4

1. सांख्य सूत्र कितने हैं?
   (क) 555 (ख) 605 (ग) 3000 (घ) 527
2. सांख्य शास्त्र में कितने अध्याय हैं?
   (क) 4 (ख) 5 (ग) 6 (घ) 7

टिप्पणी

3. सांख्य के कितने तत्व हैं?

(क) 16 (ख) 24 (ग) 25 (घ) 26

4. योगशास्त्र में कितने अध्याय हैं?

(क) 4 (ख) 5 (ग) 6 (घ) 7

5. योगसूत्र कितने हैं?

(क) 155 (ख) 195 (ग) 300 (घ) 527

6. योगशास्त्र के कितने तत्व हैं?

(क) 16 (ख) 24 (ग) 25 (घ) 26

7. योगशास्त्र में है परन्तु सांख्य शास्त्र में नहीं है, वह यह तत्व है।

(क) पुरूष (ख) ईश्वर (ग) प्रकृति (घ) महत्

8. योगशास्त्र के चतुर्थ अध्याय का नाम क्या है?

(क) समाधि (ख) साधन (ग) विभूति (घ) कैवल्य

4.8 निगम-आगम तन्त्र

'तनु विस्तारे', 'त्रैङ्. पालने', इन दो धातुओं के योग से तन्त्र शब्द की निष्पति हुई ऐसा कामिकागम तन्त्र का मत है। 'तनु विस्तारे' धातु ष्ट्रन् प्रत्यय के योग द्वारा तन्त्र शब्द की निष्पत्ति को भी अनेक द्वारा स्वीकार किया जाता है। तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्। अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा ज्ञान का विस्तार होता है, वह शास्त्र तन्त्र है। तन्त्र शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ भी होता है।

तनोति विपुलान् अर्थान् तन्त्रमन्त्रसमन्वितान्।
त्रणं च कुरूते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

सरलार्थ- तन्त्र समन्वित, मन्त्र समन्वित विपुल अर्थ-विषयों को चुनता है, विस्तार देता है और रक्षण भी करता है। अतः तन्त्र, ऐसा कहते हैं। 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदयनिः श्रेयोपायाः स आगमः' ऐसा वाचस्पति मिश्र द्वारा योगभाष्य में आगम पद का अर्थ प्रकट किया गया है।

तन्त्र का विभाजन

तन्त्र के वैपुल्य और वैविध्य के कारण विभाजन के अनेक प्रकार हैं। अतः विविध प्रकारों को यहाँ संक्षेप से कहा गया है।

मुख्य विभाग

ब्राह्मण तन्त्र, बौद्धतन्त्र, जैनतन्त्र, ये तन्त्र के तीन प्रकार हैं। यह भारतीय तन्त्रों का समावेशात्मक विभाग है। उसमें बौद्धों का तन्त्र वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान, इस भेद से तीन प्रकार का है।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-1

ब्राह्मण तन्त्र में उपास्य देवता के भेद से तीन भेद हैं। वे हैं- 1) वैष्णवागम (पाञ्चरात्र) 2) शैवागम और 3) शाक्तागम।

वैष्णव आगम में विष्णु, शैव आगम में शिव और शाक्त आगम में शक्ति, ये परा देवता उपासित हैं।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-2

प्रकारान्तर से तन्त्रशास्त्र प्रधान रूप से तीन प्रकार का है- 1) आगम 2) यामल 3) तन्त्र।

1) आगम

उसमें निगम-आगम का विभाजन किया जाता है। जहाँ पार्वती प्रश्नों को पूछती है, भगवान् शिव उत्तर देते हैं वह तन्त्र आगम कहा जाता है। जहाँ शिव प्रश्न पूछते और पार्वती उत्तर देती हैं, वह तन्त्र निगम कहलाता है। इसलिए कारिका है-

आगतं च शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजाश्रुतौ।
मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते॥

आगम लक्षण उसी प्रकार-

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनम्।
साधनञ्चैव सर्वेषां पुरश्चरणेव च॥

षट्कर्मसाधनञ्चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः॥

सरलार्थ- वाराही तन्त्र में आगम के सात लक्षण उक्त हैं। वे हैं- 1) सृष्टि, 2) प्रलय, 3) देर्वाचन, 4) सर्वसाधन, 5) पुरश्चरण, 6) षट्कर्मसाधन, 7) ध्यानयोग। और यह ध्यानयोग चार प्रकार का होता है।

2) यामल-

सृष्टिश्च ज्यौतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम्।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च।
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम्॥

सरलार्थ- यामल के आठ लक्षण है- 1) सृष्टि, 2) ज्योतिषाख्यान, 3) नित्यकृत्यप्रदीपन, 4) क्रमसूत्र, 5) वर्णभेद, 6) जातिभेद, 7) युगधर्म, 8) यमला नामक कामसिद्धाम्वा, उसके प्रतिपादित तन्त्र यामल-अष्ट हैं। उनके गण यामलाष्टक है। यामल छः हैं - 1) आदित्ययामल, 2) ब्रह्मयामल, 3) विष्णुयामल, 4) रूद्रयामल, 5) गणेशयामल, 6) आदित्ययामल।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-3

तन्त्र को ही आगम भी कहते है। कुछ वैष्णव, शैव वाङ्मय आगम पद से व्यपदिष्ट है, शाक्त, बौद्ध और जैन का वाङ्मय तन्त्र पद से व्यपदिष्ट है। कुछ निगम पद से वेद को जानते है। निगम में सिद्धान्त पक्ष और आगम में व्यवहार पक्ष प्रमुख होते हैं। अर्थात् जो तत्व निगम में प्रतिपादित है उसके लाभ के लिए साधना आगम में उपदिष्ट है। वेद विशेषतः वेदान्त ज्ञानात्मक, आगम क्रियात्मक वेद के ज्ञानुकूल होता है।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-4

भूक्षेत्र के भेद से भी तन्त्र का विभाग परिलक्षित होता है। यथा विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता, अश्वक्रान्ता और गजक्रान्ता। प्रत्येक क्षेत्र में 64 तन्त्र हैं।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-5

दार्शनिक सिद्धान्त के भेद से तन्त्र का भिन्न प्रकार से भी विभाग हो सकता है। यथा-अद्वैत प्रधान, द्वैत प्रधान और द्वैताद्वैत प्रधान ये तीन प्रकार। रामानुज के मत द्वारा पाञ्चरात्र विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक है। शैवागम में तीन मत मिले हुए हैं। शाक्त आगम में अद्वैत ही प्रतिपादित है।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-6

प्रकारान्तर से तन्त्र के दो विभाग किये जाते हैं- 1) वेदानुकूल तन्त्र 2) वेदबाह्यय तन्त्र पाञ्चरात्र और शैवागम के अनेक सिद्धान्त वेद से उद्‌भूत एवं वेद के अनुकूल हैं। शाक्तों के सात आचार हैं। उन सात आचारों में वामाचार वेदबाह्य होता है। अन्य आचार वेद सम्मत ही है। वेदबाह्य तन्त्रों में आचार, पूजापद्धति इत्यादि वेद से भिन्न होती है।

शाक्तों का आचार

शाक्त मत में पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव, से तीन भाव होते हैं। और आचार सात है। वे हैं- वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। भावः यहाँ मनस से विशिष्ट स्थिति है और आचार भावप्रभावित बाह्य आचरण है।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-7

श्रीकण्ठ पाशुपत मत के आदि प्रवर्तक है। वहाँ 28 योगाचार्य हुए। उनमें अन्तिम योगाचार्य

लकुलीश हैं। श्रीकण्ठ और लकुलीश, इन दोनों के द्वारा पाशुपत मत प्रवर्तित हुआ, ऐसा प्राय: प्रचार है। उसमें श्रीकण्ठ के चार भेद से भिन्न विशिष्टाद्वैत है - 1) शुद्धाद्वैत, 2) सेश्वराद्वैत, 3) शिवाद्वैत (विशेषाद्वैत/वीरशैव मत), 4) रसेश्वरमत। उसका अन्तर्भाव कहे गए द्वैताद्वैत रौद्रागम में होता है। द्वैत के दो दर्शन, द्वैताद्वैत के चार, अद्वैत के चार, इस प्रकार शैवागम के दश दर्शन हैं।

अद्वैतवादियों के चार दर्शन हैं - नन्दिकेश्वर द्वारा प्रतिपादित दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, क्रमदर्शन और कुलदर्शन।

ब्राह्मण तन्त्र के विभाग का प्रकार-8

माहेश्वर सम्प्रदाय

महेश्वर द्वारा प्रणीत सिद्धान्तों के अनुयायी होने से - शैव, पाशुपत, कारूणिक सिद्धान्ती (कालामुख) और कापालिक है, ऐसा वाचस्पति मिश्र ने भामती में कहा। शैव का सम्बन्ध ब्राह्मण के साथ, पाशुपत का सम्बन्ध क्षत्रिय के साथ, कालमुख का सम्बन्ध वैश्य के साथ और कापालिक का सम्बन्ध शूद्र के साथ, इस प्रकार चारों भेदों का वर्ण के साथ सम्बन्ध है, ऐसा वामनपुराण में है। (6.86.91) यहाँ शैव पद से द्वैतवादियों के शैवों का ग्रहण करते हैं। आगम शास्त्रों में शैवागम के तीन भेद कहे गए हैं। वे है- 1) द्वैतवादी शैवागम, 2) द्वैताद्वैतवादी शैद्रागम, 3) अद्वैतवादी भैरवामन। द्वैतवादियों की आगम संख्या दस, रौद्रागम की संख्या अट्ठारह, भैरवागम की संख्या अट्ठाईस प्रमाण्य को स्वीकार करते हैं।

पञ्चरात्र

पञ्चरात्र शब्द का अर्थ

पञ्च रात्रियों का समाहार पञ्चरात्र है। उसका यह मत पाञ्चरात्र है। शाण्डिल, औपगायन, मौञ्जायन, कौशिक, भारद्वाज, ऐसे पाँच योगियों द्वारा तोत-आद्र दुष्कर तप किया गया। उन पर प्रसन्न भगवान् वासुदेव ने पाँच रात्रियों तक उन्हें उपदेशित किया। अत: उनका मत पाञ्चरात्र कहलाता है। इसका आविर्भाव महाभारत के समय में हुआ।

सार्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना।
रात्रिभि: पञ्चभि सर्वं पाञ्चरात्रमिति स्मृतम्॥ (मार्कण्डेयसंहिता)

महाभारत में पाञ्चरात्र का अतिविस्तृत रूप प्रतिपादित है। इसका ही श्लोक-

एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च।
परस्परांगान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते॥
(महाभारत, शान्ति. 349.81.82)

इसके अनुसार सांख्य, योग, वेद, आरण्यक, पञ्चरात्र, ये परस्पर अंग हैं।

पाञ्चरात्र में ब्रह्म सात प्रकार के जन्म लेते हैं। इसीलिए-

ब्रह्मणो मानं जन्म प्रथमं चाक्षुषं स्मृतम्।
द्वितीय वाचिकं चान्यच्चतुर्थं श्रोत्रसम्भवम्॥
नासिक्यमपरं चान्यदण्डजं पंकजं तथा। (पारमेश्वर संहिता 1.39-39)

यहाँ कहे गये पंकज का जन्म होता है। तब नारायण, ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, आदित्य, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, ये पाञ्चरात्र के सम्प्रदाय का क्रम है। इसका उल्लेख गीता में भी प्राप्त होता है।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानमहव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गीता 4.1)

सरलार्थ- यह अव्यय योग मेरे द्वारा पूर्व में विवस्वत में कहा गया। विवस्वान् मनु को कहा गया। मनु ने इक्ष्वाकु को कहा। अत एव गीता पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, ऐसा कह सकते हैं। इसके लिए ही पाञ्चरात्र का विस्तार यहाँ अधिक किया गया है।

चातूरूप्यम्

भगवान् वासुदेव के चार रूप हैं। वे हैं- 1) पर, 2) व्यूह, 3) विभव, 4) अर्चा। कुछ अन्तर्यामी, यह पञ्चम् रूप भी ग्रहण करते है। इन रूपों के नाम हैं। यथा- पर वासुदेव, व्यूह संकर्षण, विभव प्रद्युम्न, अर्चा अनिरूद्ध। जो वैष्णव नारद आदि द्वारा किया गया पाञ्चरात्र है उसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध चार पदार्थ निरूपित हैं। भगवान् वासुदेव सर्व कारण परमेश्वर है। उनसे संकर्षण आदि जीव उत्पन्न होते हैं। उनसे मन रूप प्रद्युम्न। उनसे अनिरूद्ध रूप अहंकार। और सभी भगवान् वासुदेव के ही अंशभूत हैं। उससे भिन्न यह भगवान वासुदेव की मन-वाक्-शरीर वृत्तियों द्वारा आराधना करके कृत्याकृत्य होता है, ऐसा निरूपित है।

विशिष्टाद्वैत

पाञ्चरात्र के कुछ सिद्धान्तों को लेकर प्रवर्तित शास्त्र विशिष्टाद्वैत है।

भोक्ता भोग्यं प्ररितारं च मत्वा (श्वे. उ. 1.12), इस श्रुति प्रमाण से विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तीन तत्व स्वीकार किये जाते हैं। जीव चित्त, जगत् अचित, और चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर, ये तीन तत्व हैं। उसमें शेष द्वारा चित्-अचित् तत्वों का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा चित् अचित् तत्वों का अपृथग्भाव सम्बन्ध (अंग अंगिभाव) होता है। यह तत्व-त्रय भी सत्य रूप है। चित् अचित् विशिष्ट ईश्वर एक ही है, ऐसा विशिष्टाद्वैत मत कहता है।

पाशुपत-

मधुसूदन सरस्वती महोदय ने प्रस्तानभेद हैं, ऐसा अपने द्वारा रचित ग्रन्थ में पाशुपत मत

के विषय में इस प्रकार लिखा – 'पशुपतिमतं पाशुपतं शास्त्रं पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणाय-अथातः पाशुपतं योगविधिं व्याख्यास्यामः' इत्यादि पाँच अध्यायों की रचना की। उन पाँच अध्यायों द्वारा कार्यरूप जीव को पशु और कारण पति को ईश्वर माना है। योग पशु और पति में चित्त का समाधान रूप है। विधि भस्म द्वारा त्रिषवण, स्नान आदि निरूपण है तथा प्रयोजन दु:खान्त संज्ञा मोक्ष है। इसीलिए कार्यकारण योगविधि-दु:खान्ता ऐसी व्याख्या करते हैं।

4.9 सृष्टि-विचार के भेद से दर्शन भेद

सभी दर्शनों के संक्षिप्त रूप में तीन ही भेद है, ऐसा प्रकारान्तर द्वारा कहा जा सकता है। उसमें आरम्भवाद एक है। परिणाम वाद द्वितीय है। विवर्तवाद तृतीय है। पृथिवी, आप (जल), तेज, वायु के चार प्रकार के परमाणु द्वयणुक के क्रम से ब्रह्माण्ड पर्यन्त संसार का आरम्भ होता है। असत् ही कार्यकारक व्यापार से उत्पन्न हुआ, ऐसा प्रथम तार्किकों का मत है। मीमांसकों का मत है कि सत्व, रजस्, तमो गुणात्मक प्रधान ही महत्, अहंकार आदि के क्रम से जगद् के रूप में परिणत होता है। सांख्य, योग-पातञ्जल और पाशुपत का द्वितीय पक्ष यह है कि पूर्व में ही सदैव विद्यमान सूक्ष्म रूप में कार्य कारण रूप में व्यापार द्वारा अभिव्यक्त हुआ। ब्रह्म का परिणाम जगत् है, ऐसा वैष्णवों का मत है। स्वप्रकाशित, परमानन्द, अद्वितीय ब्रह्म अपनी माया के कारण मिथ्या रूप में ही जगत् के आकार से कल्पित है, ऐसा ब्रह्मवादियों का तृतीय पक्ष है। सभी प्रस्थानकर्ता मुनियों का तात्पर्य है कि विवर्तवाद के पर्यवसान द्वारा ही अद्वितीय परमेश्वर का प्रतिपादन होता है। उनके सर्वज्ञ होने के कारण वे मुनि भ्रान्त अथवा भ्रमित नहीं होते। किन्तु बाह्य विषयों से लिप्त मनुष्यों का पुरूषार्थों में प्रवेश संभव नहीं होता। अतः नास्तिकों के वारण के लिए उनके द्वारा प्रकार भेद प्रदर्शित किये गए हैं। वहाँ उनका तात्पर्य न जानकर वेद विरोधी तात्पर्य की उपेक्षा करने वाले अनेक पथों को ग्रहण करके एक लक्ष्य को प्राप्त करने वाले होते हैं, ऐसा सभी का मत है।

पाठगत प्रश्न 4.5

1. तन्त्र के मुख्य विभागों को लिखिए।
2. बौद्ध तन्त्र के मुख्य विभागों को लिखिए।
3. उपास्य देवता के भेद से तन्त्र भेदों को लिखिए।
4. भूक्षेत्र के भेद से तन्त्र विभागों को लिखिए।
5. शाक्तों के कितने और कौन से भाव हैं?
6. शाक्तों के कितने और कौन से आचार हैं?

7. पाञ्चरात्र के मत द्वारा वासुदेव के चार रूपों को लिखिए।
8. सृष्टि-विषय में कितने और कौन से वाद हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-4.1

1. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
   वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।
2. (घ)
3. (ग)
4. (क)
5. (क)

उत्तर-4.2

1. (क)
2. (ग)
3. (ग)
4. (ग)
5. (ख)
6. (ख)

उत्तर-4.3

1. (क)
2. (क)
3. (क)
4. (क)
5. (ग)
6. (क)
7. (ग)
8. (क)
9. (घ)
10. (ग)
11. (क)
12. (क)
13. (घ)
14. (घ)
15. (क)
16. (घ)
17. (घ)

उत्तर-4.4

1. (क)
2. (ख)

3. (ग)
4. (क)
5. (क)
6. (ख)
7. (घ)
8. (घ)
9. (क)
10. (क)
11. (घ)
12. (ग)
13. (घ)
14. (घ)

उत्तर-4.5

1. (घ)
2. (ग)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ख)
8. (घ)

उत्तर-4.5

1. ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र, जैनतन्त्र, ये तन्त्र के मुख्य तीन प्रकार हैं।

2. बौद्धों का तन्त्र वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान, इस भेद द्वारा तीन प्रकार का है।

3. उपास्य देवता के भेद से तन्त्र के तीन भेद हैं। वे हैं- 1) वैष्णवागम (पाञ्चरात्र), 2) शैवागम, 3) शाक्तागम। वैष्णवागम में विष्णु, शैवागम में शिव, शाक्तागम में शक्ति, ये परा देवता उपासित हैं।

4. भूक्षेत्र के भेद से तन्त्र विभाग है, यथा- विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता, और अश्वक्रान्ता (गजक्रान्ता)। प्रत्येक क्षेत्र में 64 तन्त्र हैं।

5. शाक्त मत में पशुभाव, वीरभाव और दिव्य भाव, ये तीन भाव हैं।

6. शाक्तमत में आचार सात हैं। वे हैं- वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार।

7. पाञ्चरात्र मत में भगवान् वासुदेव के चार रूप हैं। वे हैं- 1) पर 2) व्यूह 3) विभव 4) अर्चा। कोई अन्तर्यामी को पञ्चम रूप ग्रहण करता है। इन रूपों के नाम है। यथा पर-वासुदेव, व्यूह-संकर्षण, विभव-प्रद्युम्न, अर्चा-अनिरूद्ध है।

8. सृष्टि के विषय में तीन वाद हैं। वे हैं- आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद।

।।चतुर्थ पाठ समाप्त।।